शिक्षा के व्यवसायीकरण के दुष्परिणाम

वैश्वीकरण की दानवी शक्तियों द्वारा शिक्षा नीति में किये जा रहे बदलावों के घातक परिणाम अब सामने आ चुके हैं। साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के दौर में हमारे देश के शिक्षकों, शिक्षाशास्त्रियों और नीति-निर्माताओं की कोई निर्णायक भूमिका या पहलकदमी नहीं रह गई है। उनकी भूमिका बस इतनी ही है कि वे वैश्वीकरण के कर्ता-धर्ताओं के आदेशों को सिर झुका कर स्वीकार करें और गुलामों की तरह उनका पालन करें। उनका कर्त्तव्य सिर्फ यही रह गया है कि पूंजीवादी बाज़ार के हित में शिक्षा में किये जा रहे तोड़-मरोड़ के अनुरूप वे खुद को ढाल लें और छात्रों को भी उसी सांचे में ढालने का प्रयास करें।

शिक्षा नीति में बदलाव लाने में विश्व बैंक जैसी साम्राज्यवादी संस्थाओं और भारतीय पूंजीपतियों की प्रत्यक्ष भूमिका अब इस हद तक बढ़ गई है कि किसी भी नये फ़ैसले पर, चाहे वे संविधान के विरुद्ध ही क्यों न हों, संसद में स्वीकृति लेना भी जरूरी नहीं समझा जाता। 1990 में सबके लिए शिक्षा पर जोमतियन सम्मेलन की सिफ़ारिशों को लागू करने के लिए विश्व बैंक से सीधे समझौता करके जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू किया जाना इसका स्पष्ट परिणाम है। निजी विश्वविद्यालय कानून - 1995 अभी संसद में अटका हुआ है, लेकिन उसके लगभग सभी प्रावधानों को बेरोक-टोक लागू किया जा रहा है। मतलब स्पष्ट है कि साम्राज्यवादी-पूंजीवादी शक्तियों के लिए जनभावना, संविधान और संवैधानिक संस्थाओं तथा बाज़ार-व्यवस्था के मार्ग में आने वाले किसी भी अवरोध की रत्ती भर भी परवाह नहीं है। इन शिक्षा नीतियों का चरित्र जितना जनविरोधी है, उतने ही निरंकुश तरीके से इन्हें लागू भी किया जा रहा है। छात्रों-शिक्षकों या आम जनता ने जहां कहीं भी इन नीतियों का विरोध किया, उसे बर्बर तरीके से कुचलने में हमारे शासकों ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ा है।

शासक वर्गों द्वारा अपने आंतरिक स्रोतों से देश को आत्मनिर्भर बनाने का रास्ता छोड़ कर साम्राज्यवाद के आगे आत्मसमर्पण करने के साथ ही शिक्षा को भी नग्न पूंजीवादी लूट और शोषण के लिए वैचारिक-नैतिक-सांस्कृतिक आधार तैयार करने की दिशा में मोड़ दिया गया। पूंजीवादपरस्त, अमेरिकापरस्त, उपभोक्तावादी, अपनी परंपरा और विरासत से अनभिज्ञ, देश, समाज और जनता की समस्याओं से पूरी तरह कटे, चरम स्वार्थी और आत्मकेंद्रित, ईष्या, द्वेष और अंधी प्रतिस्पर्द्धा की मानसिकता से ग्रस्त तथा विदेशी संस्कृति और तकनीक के प्रति अंध श्रद्धालु लोगों की जमात तैयार करना ही आज शिक्षा का उद्देश्य रह गया है। ऐसे ही लोग साम्राज्यवाद-पूंजीवाद की सेवा करने वाले 'रोबोटनुमा मानव-संसाधन' हो सकते हैं जो स्वतंत्र चिंतन, लोकतांत्रिक मूल्य और न्यायप्रियता से पूरी तरह अछूते हों। कॉल सेंटरों या कंप्यूटर के जरिये 'आउटसोर्सिंग' का काम करने वाले 'साइबर कुली', इलेक्ट्रानिक मीडिया, टीवी चैनल, टूरिज्म और मार्केटिंग में लगे लोग या बहुराष्ट्रीय निगमों के कारिंदों के बीच इस नयी साम्राज्यवादी संस्कृति और नयी कारपोरेट शिक्षा में ढाले गये अक्सर मिल जाते हैं। उन्हें इस बात से कोई लेना-देना नहीं है कि वे जो काम कर रहे हैं, उससे किसे लाभ-हानि होती है और देश-समाज पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है। भविष्य की आशंका में किसी भी तरह अपनी नौकरी बचाने और अंधी होड़ में अपने सहकर्मियों से आगे निकल जाने की चिंता से वे हमेशा ग्रस्त रहते हैं, लेकिन अपने लिए बेहतर सेवा-शर्तों और बेहतर भविष्य के लिए सामूहिक प्रयास करने के बारे में वे बिल्कुल नहीं सोचते। मैकाले ने जिन मानस पुत्रों की परिकल्पना करते हुए भारत में औपनिवेशिक शिक्षा की बुनियाद रखी थी, उन्हीं के नये संस्करण तैयार करना वैश्वीकरण के वर्तमान दौर की शिक्षा का उद्देश्य है और इसमें यह काफी हद तक सफल होती दिखाई दे रही है।

शिक्षा नीतियों में बदलाव का दूसरा नतीजा यह है कि शिक्षा के प्रति समग्र दृष्टिकोण का परित्याग करके उसे अलग-अलग खानों में बांट दिया गया और केवल उन्हीं पाठ्यक्रमों को बढ़ावा दिया जा रहा है जिनकी तात्कालिक तौर पर बाज़ार में अत्यधिक मांग और ऊंची कीमत हो। यह प्रवृत्ति इतनी स्पष्ट और मुखर है कि इसके लिए उदाहरणों की कमी नहीं है। छात्रों को बहुआयामी ज्ञान-विज्ञान से लैस करने के बजाय व्यावसायिक और रोज़गारपरक शिक्षा के नाम पर उन्हें 'एकांगी और उपयोगितावादी सूचनाओं और दक्षताओं' तक सीमित रखा जा रहा है। नतीजा यह कि निजी व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की पढ़ाई करके निकलने वाले छात्रों में से ऐसे प्रबुद्ध लोगों को ढूंढ निकालना मुश्किल है जो देश-दुनिया के इतिहास या देश-दुनिया की वर्तमान परिस्थितियों के बारे में सामान्य जानकारी भी रखते हों या किसी भी मसले पर उनका कोई स्पष्ट नज़रिया हो। हमारे देश में उच्च शिक्षा तक बहुत ही थोड़े लोगों की पहुंच है और उनमें भी विचारहीन कारिन्दों की बहुतायत हमारे देश और समाज के भविष्य के लिए अत्यंत विनाशकारी है।

उच्च शिक्षा को रोज़गारपरक शिक्षा का पर्याय बना कर इस छिछलेपन को बढ़ावा देने के पीछे एक गहरी साजिश है, जिसे समझना जरूरी है। छात्रों को किसी खास रोजगार के लिए तैयार करना शिक्षा व्यवस्था का गौण पहलू है। इसे एकमात्र उद्देश्य बताना शिक्षा के महत्त्व को रसातल में पहुंचा देना है। लेकिन शिक्षा को मांग और आपूर्ति के आधार पर चलाने और उसका व्यापार करने वालों के लिए यह जरूरी था कि शिक्षा को रोज़गार से जोड़ने की बात पर जरूरत से ज़्यादा जोर दिया जाये। यानी 'जितनी महंगी शिक्षा, उतनी अच्छी नौकरी' को लोगों के दिमाग में बैठा दिया जाये। साथ ही, ज्ञान-विज्ञान की उन शाखाओं का माखौल उड़ाया जाये जिनका छात्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व-निर्माण और देश के भविष्य की दृष्टि से चाहे जितना महत्त्व हो, लेकिन आज के बाज़ार में ऊंची कीमत न हो, जैसे सामाजिक-विज्ञान, विशुद्ध प्राकृतिक विज्ञान, दर्शन, भाषा, ललित कला, साहित्य इत्यादि। इस कॉमन सेंस की स्थापना के बाद ही शिक्षा को साम्राज्यवादी हितों के अनुरूप ढाला और खरीद-बिक्री के लिए सुगम बनाया जा सकता है और आज यही हो रहा है। और तो और, अब कर्मकांड, ज्योतिष, हस्तरेखा जैसे अंधविश्वास और ढोंग-पाखंड से भरे अवैज्ञानिक गोरखधंधों को रोजगारपरक शिक्षा के नाम पर प्रोत्साहित किया जा रहा है, जो देश-समाज की प्रगति में बाधक है।

शिक्षा नीतियों का सबसे सीधा असर यह हुआ है कि निजीकरण और व्यवसायीकरण के जरिये शिक्षा को महंगा करके व्यापक छात्र समुदाय को शिक्षा से वंचित कर दिया गया। इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय के अधीन बी.एड. कॉलेज की हर सीट की कीमत 45000 रुपये रखी गई। मेरठ विश्वविद्यालय में बी.एड. की प्राइवेट सीटों पर पिछले वर्ष 120,000 रुपये तक की बोली लगी, जबकि दिल्ली विश्वविद्यालय में बी.एड. की फीस 2,500 रुपये है। उसी स्तर और उससे भी घटिया सुविधाओं वाले पाठ्यक्रम के लिए इतनी बड़ी रकम वसूलना क्या छात्रों को सरेआम लूटना नहीं है? क्या आम छात्रों के लिए इसे चुका पाना संभव है? मेडिकल की पूरी पढ़ाई के लिए 15 से 25 लाख रुपये फीस चुकाना हमारे देश में कितने परिवारों के लिए संभव है? बिड़ला-अंबानी ने अपनी रिपोर्ट में बी.ए., बी.एस.सी. की पढ़ाई पूरी करने के लिए एक लाख रुपये तक की फीस रखने की सिफारिश की है।

आजादी के बाद सदियों से समाज के हाशिये पर पड़ी आम जनता, विशेषकर महिलाओं, दलितों और आदिवासियों में शिक्षा की आकांक्षा और मांग बढ़ी थी और कम से कम उनके सामने सपना था कि अपनी प्रतिभा के बल पर वे भी उच्च शिक्षा हासिल कर सकते हैं। व्यवसायीकरण ने उनके इस सपने को चूर-चूर कर दिया और उच्च शिक्षा को नैतिक-अनैतिक कमाई से धनवान बने मुठ्ठी भर लोगों के लिए पूरी तरह आरक्षित कर दिया।

पहले भी हमारे देश में धनी और गरीब जनता की संतानों के लिए दोहरी शिक्षा व्यवस्था थी। वैश्वीकरण के इस दौर में प्राथमिक स्तर पर सस्ती, महंगी और मुफ़्त शिक्षा तथा माध्यमिक और उच्च स्तर पर प्राइवेट, सरकारी, दूरस्थ, पत्राचार और विदेशी पाठ्यक्रम या डिग्री जैसी नाना प्रकार की शिक्षा के जरिये पहले से ही मौजूद विषमता की खाई को और अधिक बढ़ाया जा रहा है।

औपचारिक शिक्षा के अलावा शासक वर्ग विभिन्न माध्यमों से साम्राज्यवादी संस्कृति का प्रचार तथा जनता की चेतना को कुंद करने और उसे दिग्भ्रमित करने का लगातार प्रयास कर रहा है। अख़बारों, पत्र-पत्रिकाओं, टेलीविजन और अन्य प्रचार माध्यमों के जरिये एक तरफ विदेशों से आयातित पतित साम्राज्यवादी संस्कृति और दूसरी ओर अंधविश्वास, ढोंग-पाखंड और अवैज्ञानिक विचार का कचरा जनता के मन-मस्तिष्क में ठूंसा जा रहा है। शिक्षा के औपचारिक तंत्र की तुलना में साम्राज्यवाद की कार्रवाई कहीं ज़्यादा घातक है। 'इतिहास का अंत', 'सपनों का अंत', 'विचारों का अंत', 'कोई विकल्प नहीं', 'कुछ नहीं किया जा सकता', इसलिए खाओ-पियो, मौज करो, भोग-लिप्सा में डूब जाओ, चमक-दमक से भरे उपभोक्ता मालों के साथ-साथ ऐसे ही निकृष्टतम विचार और पतित संस्कृति अमेरिका और पश्चिमी पूंजीवादी देशों के टीवी चैनल, इंटरनेट और पत्र-पत्रिकायें पूरी दुनिया में फैला रहे हैं। मानवीय गुणों, इंसानी रिश्तों, भाईचारा, आपसी सहयोग और एकता की जगह आज चरम स्वार्थ, हृदयहीनता, बेगानापन, आत्मकेंद्रित जिंदगी, हिंसा, कामुकता, निराशोन्माद और अकेलापन को उभारने वाली सामग्रियों का वे दुनिया भर में थोक भाव से निर्यात कर रहे हैं। जिसे 'ज्ञान आधारित उद्योग' का 'भारहीन माल' कहा जा रहा है, उसका व्यापार करके अमेरिका अरबों डालर की कमाई करता है। लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विश्व पूंजीवादी व्यवस्था को चिरस्थाई बनाने और यथास्थिति को बरकरार रखने के लिए यह लगातार वैचारिक-सांस्कृतिक माहौल तैयार करता रहता है।

आज देश भर में मैनेजमेंट, कानून या अन्य पाठ्यक्रमों के ऐसे प्राइवेट कॉलेज खुल गये हैं जिनकरा उद्देश्य बहुराष्ट्रीय कंपनियों की जरूरत के लिए कारिन्दे तैयार करना है। इन कॉलेजों में प्रवेश-प्रक्रिया, प्रशासनिक ढांचा, पढ़ाई का स्तर, मूल्यांकन आदि मामलों में पूरी चुस्ती और पारदर्शिता होती है। जिन बुराइयों से हमारे अधिकांश सरकारी विश्वविद्यालय ग्रस्त हैं, उनका लेशमात्र भी यहां देखने को नहीं मिलता। शिक्षक और छात्र, दोनों ही कर्त्तव्यनिष्ठ और परिश्रमी हैं। ऊपर-ऊपर देखने पर इन संस्थाओं की व्यवस्था आदर्श और श्रेष्ठ लगती है। लेकिन अपने उद्देश्यों के अनुरूप ही देशी-विदेशी कंपनियों के लिए खास तरह के शिक्षित लोगों की जमात तैयार करना इन संस्थानों का उद्देश्य है। इनमें पढ़ने वाले फीस के रूप में भारी रकम चुकाते हैं। यहां के छात्र समाज से पूरी तरह कटे होते हैं। विषय की पढ़ाई देश-दुनिया की परिस्थितियों से काट कर, एकांगी और यांत्रिक रूप से की जाती है। विषय-वस्तु को सामाजिक-राजनीतिक हालात से जोड़ने का काम नहीं किया जाता। उन्हें सिर्फ यह बताया जाता है कि इस विषय-वस्तु को पढ़कर वे किसी कंपनी में अच्छी से अच्छी सेवा कैसे करेंगे, उनकी नौकरी में क्या उपयोगिता होगी और अपने पेशे में शिखर पर पहुंचने के लिए उन्हें क्या करना होगा। पूरी शिक्षा को कारपोरेट में उनकी नौकरी के हिसाब से ढाल दिया जाता है, जहां सैद्धांतिक पक्ष को व्यापकता में बताने के बजाय उपयोगितावादी और तकनीकी पक्ष तक सीमित कर दिया जाता है। छात्रों को भावनात्मक, सामाजिक व राजनीतिक सरोकारों से दूर रहने की शिक्षा दी जाती है और कभी भी इन विषयों पर आपस में कोई चर्चा नहीं होती। उनके बीच आपसी सहयोग और सुख-दुख में भागीदारी की जगह अंधी प्रतिस्पर्द्धा, ईर्ष्या और सरोकारहीनता के रिश्ते होते हैं।

कारपोरेट के मैनेजर विधि अधिकारी या अन्य पेशों की शिक्षा देने वाले इन संस्थानों से निकलते ही लगभग सभी छात्रों को ऊंची तनख्वाह वाली नौकरी मिल जाती है। लेकिन किसी देश-समाज के लिए इससे दुर्भाग्यपूर्ण क्या होगा कि प्रतिभाशाली दिमाग ऐसे काम में लगे होते हैं जिसका सृजनशीलता से कोई लेना-देना नहीं होता। अपने अच्छे वेतन के बदले वे एक उबाऊ, नीरस और रूटीनी जिंदगी जीने के लिए बाध्य होते हैं। उनकी प्रतिभा और परिश्रम अपने देश-समाज के लिए निरर्थक होता है। वे अपने देश में ही रह कर भी विदेशियों के चाकर होते हैं। निश्चय ही, यह नये तरह के कारपोरेट हितों की सेवा में लगी शिक्षा देश के लिए घातक है।

शिक्षा के अनौपचारिक साधन-प्रचार माध्यमों, एफ.एम.रेडियो, टीवी, पत्र-पत्रिकाओं, इंटरनेट और अख़बारों द्वारा नयी पीढ़ी के मन में जो विचार और संस्कार दिये जा रहे हैं, वे तो और भी खतरनाक हैं।

-देश-विदेश पुस्तिका-दो से

अख़बारों में अश्लील विज्ञापन

आजकल अख़बारों में अश्लील विज्ञापनों की भरमार हो गई है। कोई भी ऐसा अख़बार नहीं है जिसमें अश्लील विज्ञापन न छपते हों। प्राय: सभी अख़बारों में मसाज के विज्ञापन छपते हैं जिनमें लिखा होता है कि ट्रेंड और अनट्रेंड युवक-युवतियां मसाज सेवा कर दिन में दस हज़ार से पंद्रह हजार रुपये कमायें। इसके अलावा लिंगवर्द्धक और यौन उत्तेजक तेलों के विज्ञापन तो छपते ही हैं। युवतियों से रोमांस भरी बातें और उनके साथ मौज-मस्ती के विज्ञापन भी छपते हैं। इन विज्ञापनों के जाल में जो लोग फंसते हैं, वे ठगी के शिकार होते हैं। लंबी-तगड़ी फीस लेने के बाद युवकों को फ्रेंडशिप क्लब चलाने वाले ऐसे मोबाइल नंबर सौंप देते हैं जिस पर उनकी किसी युवती अथवा महिला से बातचीत नहीं हो पाती है। अगर वे फ्रेंडशिप क्लब चलाने वालों से इसकी शिकायत करते हैं तो वे उन्हें कुछ अन्य नंबर दे देते हैं। लेकिन उन नंबरों पर भी बातचीत नहीं हो पाती। लज्जावश नवयुवक इसकी शिकायत भी किसी से नहीं कर पाते हैं और यह समझ कर संतोष कर लेते हैं कि उनके पैसे डूब गये। दूसरी तरफ, जो युवतियां फ्रेंडशिप क्लब की मेंबर बनती हैं, उनसे कोई फीस नहीं ली जाती, पर उनके फोन नंबरों का इस्तेमाल अश्लील किस्म की वार्ता के लिए किया जाता है। कुछ समय पहले दिल्ली पुलिस ने ऐसे ही एक फ्रेंडशिप क्लब पर छापा मारा था जहां से कई मोबाइल फोन और लड़के एवं लड़कियां पकड़े गये थे। उन पर यह आरोप था कि फ्रेंडशिप क्लब के नाम पर वहां वेश्यावृत्ति का अड्डा चलाया जाता था। यह सच है। फ्रेंडशिप क्लबों के नाम पर युवकों से पैसों की ठगी तो की ही जाती है, उनकी आड़ में वेश्यावृत्ति का धंधा भी चलाया जाता है।

अगर अख़बार वाले ऐसे अश्लील विज्ञापनों का बहिष्कार कर दें तो अनैतिक व्यापार करने वालों को अपना प्रचार-प्रसार करने का मौका नहीं मिलेगा।

जहां तक मसाज सेवा देने वालों की बात है तो यह छुपे तौर पर वेश्यावृत्ति के ही विज्ञापन होते हैं। यह सोचने वाली बात है कि ऐसा कौन-सा धंधा हो सकता है कि जिसमें एक ही दिन में दस से पंद्रह हज़ार रुपये की आय हो सके। इस तरह की आय सिर्फ वेश्यावृत्ति के माध्यम से हो सकती है। मसाज सेवा के सबसे ज़्यादा विज्ञापन अंग्रेजी अख़बारों में प्रकाशित होते हैं जिनमें विदेशी युवतियों द्वारा दिन हो या रात, हर वक्त मसाज करने की बात लिखी होती है। साथ ही, यह भी लिखा होता है सिर्फ वे लोग ही संपर्क करें जो फाइव स्टार और सेवन स्टार होटलों में टिके हुए हों। कुछ समय पहले फाइव स्टार होटल में टिके एक व्यवसायी ने इनके द्वारा ठगे जाने की बात उजागर की थी और पुलिस में केस दर्ज कराया था। पर इनके शिकार अधिकांश लोग लज्जा और संकोचवश अपने साथ हुई धोखाधड़ी की बात को उजागर नहीं करते। इसलिए दोषियों के विरुद्ध कोई कार्रवाई भी नहीं हो पाती।

यहां सवाल यह उठता है कि अख़बारों के संचालक इस तरह के अश्लील विज्ञापन छापते ही क्यों हैं? जाहिर है, ऐसा वे मुनाफ़े के लिए करते हैं, पर क्या समाज के प्रति उनकी कोई नैतिक जिम्मेवारी नहीं है? अख़बारों के सामने जनहित सबसे बड़ा मुद्दा होना चाहिए, पर मुनाफे को ध्यान में रखते हुए वे समाज के प्रति अपनी जिम्मेवारी को भूल जाते हैं। अगर अख़बार वाले ऐसे अश्लील विज्ञापनों का बहिष्कार कर दें तो अनैतिक व्यापार करने वालों को अपना प्रचार-प्रसार करने का मौका नहीं मिलेगा। इससे समाज और जनता की भलाई होगी और युवकों-युवतियों को भी बहकने का मौका नहीं मिलेगा।

- प्रतिनिधि